Since March 2002
A National, Registered & Refereed Monthly Journal : History
Research Link - 172, Vol - XVII (5), July - 2018, Page No. 57-61
ISSN - 0973-1628 ■ RNI - MPHIN-2002-7041 ■ Impact Factor - 2015 - 2.782

पूर्व मध्यकालीन सामाजिक जीवन की मनोरंजक गतिविधियाँ : एक विश्लेषण

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य सामन्ती समाज में प्रचलित मनोरंजन के विविध रूपों को दिखाना एवं साथ ही यह दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है कि सामन्ती व्यवस्था में जनसाधारण का जीवन निर्वाह कठोर होते हुए भी, मनोरंजन में उनकी कितनी भागीदारी थी। पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्त्रोत विवेच्यकालीन समाज के मनोरंजन के साधनों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। विभिन्न साधनों से पता चलता है कि लोग द्यूत क्रीडा, आखेट, दौड़, संगीत एवं नृत्य, नाटकों, ऐन्द्रजालिका, विभिन्न क्रीडाओं, कथा एवं कहानियों, गोष्ठियों, उत्सवों, गणिकाओं एवं देवदासियों के द्वारा अपना मन बहलाते थे।

डॉ. राजपाल

जीवन में भोजन एवं वस्त्र के समान ही मनोरंजन भी आवश्यक है। निरन्तर विभिन्न दुश्चिन्ताओं से पीड़ित मनुष्य मनोरंजन द्वारा कुछ देर के लिए उनसे मुक्ति पा लेता है। आकांक्षाओं की पूर्ति में यावज्जीवन लगा हुआ, वह मानसिक तनावों से घिर जाता है। एकरसता से उसकी कार्य क्षमता एवं कुशलता घटती जाती है। मनोविनोद उसके न तनावों से दूर कर नवीन उत्साह एवं शक्ति का संचार करते हैं। पुनः वह अपनी मानसिक शक्तियों को बटोर कर पूरी तन्मयता से जीवन संग्राम में प्रवृत्त होता है। भारतीय मनीषी इस तथ्य से पूर्णतः परिचित थे। अनादि काल से ही नृत्य, संगीत, क्रीड़ाओं आदि द्वारा मनोरंजन की प्रथा रही है। मनोरंजन समाज की सुख स्मृद्धि का सूचक है। बौद्धिक उच्चता एवं आर्थिक सम्पन्नता के अनुसार मनोरंजन में भी विविधता होती है। हर वर्ग के लोग अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार इसमें प्रवृत रहे हैं। राजा से लेकर साधारण मनुष्य तक सभी अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार मनोरंजन के साधन ढूँढ लेते हैं।

पूर्व मध्यकालीन समाज में विभिन्न मनोरंजनों का विस्तृत विवरण तत्कालीन स्त्रोतों में उपलब्ध है। पूर्वमध्यकाल में नवीन राजवंशों और राज्यों को उदय का अवसर प्राप्त हुआ। इनमें से एक है उस वर्ग के लोगों की शक्ति की अभिवृद्धि जिन्हें समकालीन लेखकों ने सामन्त, रणक, रात आदि विभिन्न संज्ञाओं से अभिहित किया है। उनके मूल पद काफी अलग-अलग थे। कुछ सामंत सरकारी ओहदेदार थे जिन्हें नकद भुगतान न करने के बदले अधिकाधिक परिमाण में राजस्वदायी गाँव दे दिए जाते थे। कुछ पराजित राजा और उनके समर्थक थे, जो कुछ सीमित इलाकों के राजस्व का उपभोग करते थे। एक तीसरी कोटि स्थानीय वंशानुगत सरदारों या सैनिक पुरूषार्थ करने वाले ऐसे लोगों की थी जिन्होंने अपने सशक्त समर्थकों की सहायता से छोटे-मोटे इलाकों में अपनी सत्ता कायम कर ली थी। वे हमेशा एक दूसरे से जूझते रहते थे और अपने-अपने प्रभाव क्षेत्र की वृद्धि के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। राजा भी एक अधिक शक्तिशाली सामंती सरदार ही होता था।[1] उधर इन शासकों के इलाकों के अन्दर विभिन्न अधिकारी भी अपनी-अपनी जागीरों के वंशानुगत मानते थे। वंशानुगत जागीरदार धीरे-धीरे सरकार के बहुत से कार्यों को अपने हाथों में समेटने लगे। वे न केवल राजस्व निर्धारित और वसूल करते थे, बल्कि अधिकाधिक प्रशासनिक अधिकार भी हथियाते जा रहे थे। सामन्तों को अपने क्षेत्र में शान्ति, कानून व्यवस्था बनाये रखना, दण्द देना और कर वसूल करने का अधिकार था। इस प्रकार सत्ता के विकेन्द्रियकरण के कारण राजनीतिक एकता नष्ट प्रायः हो गयी। सुदृढ़ केन्द्रिय नियन्त्रण न होने के कारण ये सामन्ती शासक प्रायः हर समय भोग-विलास में संक्षिप्त रहते थे। सामन्ती शासकों को अपनी जागीर से अत्यधिक आय होती थी क्योंकि वह कृषकों से मनचाहा कर वसूल करते थे। सामन्तों को केन्द्रिय सरकार को बहुत कम कर देना होता था, इसलिए उनके पास काफी अतिरिक्त धन बच जाता था। इस अतिरिक्त धन के छिन जाने के भय से ये सामन्ती सरदार इस धन को अपने विलासपूर्ण कार्यों पर खर्च करते थे। सामन्तों की देखा-देखी बड़े-बड़े व्यापारी और सरकारी अधिकारी भी उनके तौर-तरीकों की नकल करते थे और उनका रहन-सहन भी शाही किस्म का होता था।

पूर्व मध्यकाल में सामाजिक मनोरंजन के साधन दो प्रकार के थे, एक वे जो राजकीय वर्ग में प्रचलित थे तथा दूसरे वे जिनका प्रचलन जन-साधारण के बीच में था। आखेट, द्यूत, शतरंज, उद्यान क्रीड़ा, जल क्रीड़ा, नृत्य, संगीत, गोष्ठियाँ घरानों के मनोरंजन के साधन थे। खेल, तमाशे, धार्मिक त्यौहार एवं उत्सव जनसाधारण के मनोविनोद के साधन थे। अनेक विद्वानों ने अपनी पुस्तकों और शोधपत्रों में आमोद-प्रमोद के साधनों का वर्णन किया है। इन विद्वानों में डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, प्राचीन भारत में संघटित जीवन, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, मद्यकालीन भारतीय संस्कृति, जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, डॉ. कृष्ण भावुक, भारतीय संस्कृति की महिमा, बुद्ध प्रकाश, भारतीय धर्म

प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

एवं संस्कृति, सत्यकेतुविद्यालंकार, प्राचीन भारत का अध्ययन मुख्यतः सामाजिक जीवन के अन्तर्गत कया है, तथा जो अध्ययन किया है, वह मुख्यतः पूर्वमध्यकालीन न होकर प्राचीन भारत के विभिन्न राजवंशों से सम्बन्धित है, जिसको देखते हुए हम इसे संक्षिप्त और अपर्याप्त कह सकते हैं।

प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य उद्देश्य सामंती समाज में प्रचलित मनोरंजन के विविध रूपों को दिखाना एवं साथ ही यह दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है कि सामन्ती व्यवस्था में जनसाधारण का जीवन निर्वाह कठोर होते हुए भी मनोरंजन में उनकी कितनी भागीदारी थी। पुरातात्विक एवं साहित्यिक स्त्रोत विवेच्यकालीन समाज के मनोरंजन के साधनों पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। विभिन्न साधनों से पता चलता है कि लोग द्यूत क्रीडा, आखेट, दौड़, संगीत एवं नृत्य, नाटकों, ऐन्द्रजालिका, विभिन्न क्रीडाओं, कथा एवं कहानियों, गोष्ठियों, उत्सवों, गणिकाओं एवं देवदासियों के द्वारा अपना मन बहलाते थे।

पूर्वमध्यकालीन समाज में द्यूत-क्रीड़ा का प्रचलन उच्च वर्ग में अत्यधिक था। किन्तु साधारण वर्ग भी इससे अछूता नहीं था। कादम्बरी से विदित होता है कि चन्द्रापीड़ा ने जुआ खेलना भी सीखा था एवं वह द्यूत-क्रीड़ा में दक्ष था।[2] बाण के भी कुछ साथी जुआरी थे। उसने लिखा है कि चारणों के वर्णन से थानेश्वर एक द्यूतस्थान (जुआघर) के समान प्रतीत हो रहा था। द्यूत-क्रीडा प्राय पुरूषों का खेल था किन्तु स्त्रियों के लिए भी प्रतिबन्धित न था। कादम्बरी के महाश्वेता वर्णन में स्त्रियों को द्यूत-क्रीडा में निपण होने तथा पाशक विद्या रहस्य को स्वाधीन करने का निर्देश है।[3] राजसेखर के बालरामायण में द्यूत-क्रीडा को एक आकर्षक खेल कहा गया है, जिसकी ओर बहुत से लोग आकर्षित होते थे।[4] बालरामायण में राजा एवं रानी के द्वारा अपनी कोटि के लोगों से द्यूत-क्रीडा खेलने का वर्णन मिलता है। बिल्हण के अनुसार तत्कालीन अभिजातवर्ग की द्यूत-क्रीड़ा में अत्याधिक रूचि थी। कलचुरि रत्न देव द्वितीय के अकलतरा शिलालेख में पासा खेलने एवं शर्त लगाने का उल्लेख गृह-क्रीड़ा के रूप में हुआ है।[5] क्षेमेन्द्र ने दशोपदेश में द्यूत-क्रीडा का चित्रण किया है, जो गणेश का स्मरण कर जुआरियों के दल को विजय करने हेतु गुरू से आशीर्वाद प्राप्त करने जाता है र अन्त में अपना सब-कुछ गवाँ बैठता है।[6] कला-विलास में पाँसा फैंक कर अपना हस्त कौशल दिखाने वाले द्यूत-कर का चित्रण है जो सभी दावों को जीत लेता है।[7] समयमातृका में भी कपटपूर्ण पाँसों के प्रयोग से कंकाली द्वारा द्यूतशाला में सभी धन जीत लेने का वर्णन है।[8] बृहत्कथामंजरी में कवि ने द्यूतशाला में तत्पर, पराजित होने पर पृथ्वी पर हाथ पटकते हुए, बड़ा हाहाकार कर एक दूसरे को तिरस्कृत करते हुए, भुजंगों की तरह फुंफकारते हुए द्यूतकरों का चित्रण किया है। तत्पश्चात् उन निर्दयी जुआरियों द्वारा, जो पहले मित्र थे, अपना धन वसूलने हेतु सूखी दाढ़ी, मूच्छों और केशों को पकड़कर हारे हुए जुआरियों को घसीटने, चोट लगे स्थानों पर लवण जल सिंचित कर पीड़ित करने और अन्त में कुएँ में फैंक देने का वर्णन आया है। द्यूतसाला और द्यूतकारों के इस यथार्थ चित्रण में प्रयुक्त भाषा तथा भाव कवि की द्यूत के प्रति हार्दिक घृणा और ग्लानि प्रदर्शित करते हैं।[9] सोमेश्वर के मानसोल्लास में कहा गया है कि द्यूत-खेलने में दोनों ओर के पक्षों द्वारा पण की स्थापना होती थी। दोनों पक्ष के लोग एक दूसरे के पण को शिथिल कर अपने पण को पुष्ट करने का प्रयत्न करते थे। खेल में विजयी होने पर व्यक्ति द्यूत छोड़ देने का प्रयत्न करता था, किन्तु हारा हुआ व्यक्ति विजय की इच्छा से द्यूत के व्यसन को नहीं त्यागता था और यत्नपूर्वक अपनी हार तथा जीत देखता था।[10] तत्कालीन समाज में यद्यपि द्यूत-क्रीडा को मनोरंजन का प्रमुख साधन माना जाता था, लेकिन समाज द्वारा मनोरंजन के इस साधन को घृणा की दृष्टि से देखाज जाता था। कथासरितसागर में कहा गया है कि जुए में हारे हुए द्यूर्त जुरी के लिए कौन सा कार्य दुष्कर है। वेदपाठी देवव्रत ब्राम्हण द्यूत के व्यसन में पना सारा धन गवाँ बैठता है। लेकिन तत्कालीन समाज में जुआ खेलना दण्डनीय अपराध नहीं समझा जाता था।

विवेच्यकाल में राजकीय आखेट का विस्तृत विवरण कलचुरि युवराज के बिलहरी शिलालेख[11] में कहा गया है कि इस राजकुमार ने अपनी बाँहों की शक्ति से व्याघ्ररूपी असुर, जिसका मुँह नुकीले दाँतों से जानवरों को फाड़ डालने के लिए बड़ा ही भयानक था, को पराजित किया और हाथ में खड़ग धारण किया। इस अभिलेख के दूसरे श्लोक में हाथियों को पकड़ने की क्रीड़ा का वर्ण न है। इसका उल्लेख रत्नदेव द्वितीय के अकलत्तरा अभिलेख में भी हुआ है, जिसमें यह कहा गया है कि विन्ध्य पर्वत जंगली हाथी पकड़ने का प्रमुख क्षेत्र है। राजसेखर ने काव्यमीमांसा में हरिण एवं वनशूकरों के माँस का उल्लेख किया है।[12] इससे स्पष्ट होता है, उस समय आखेट मनोरंजन का प्रमुख था। कथासरितसागर में शिकार प्रसंगों का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है। राजा उदयन इस विलासक्रीड़ा के बीच कभी-कभी बहेलियों के साथ हरे पत्तों का सा वेश-धारण किए हुए और धनुष लिए हुए मृगवनों का भी सेवन करता था। कथासरितसागर में राजाओं के शस्त्राभ्यास के लिए मृगया आवश्यक मानी गई है। अल्बेरूनी ने मृग के शिकार के लिए उन्हें हाथ में पकड़कर करने का विस्तृत विवरण दिया है।[13] साथ ही पशु-पक्षियों की मृगया करने के लिए शिकारियों द्वारा प्रयुक्त वाद्ययन्त्रों का उल्लेख किया है। राजतरंगिनी के अनुसार कश्मीर में श्रृंगाल का शिकार अत्यधिक लोकप्रिय था। शिकारी अपने साथ कुत्तों के झुन्ड और बड़े-बड़े जाल लेकर जाते थे। इनके साथ डोम जाते थे जो आवाज करके जानवरों को भगाते थे।[14] पूर्व मध्यकालीन समाज में आखेट केवल उच्च वर्ग के लोगों के लिए ही मनोरंजन का साधन था, निम्न वर्ग के लोग भोजन के लिए तथा अपनी आजीविका चलाने के लिए आखेट किया करते थे।

विवेच्यकाल में यद्यपि घुड़दौड़ का प्रचलन था, तथापि मनोरंजन के रूप में उसका महत्व कम हो गया था। विजयसिंह कलचुरि के रीवा शिलालेख में घुड़दौड़ को उनके मनपसंद प्रमोद के रूप में वर्णित किया गया है। वाहर (कलचूरी) के रत्नपुर शिलालेख में रथदौड़ एवं घुड़दौड़ के सम्बन्ध में कहा गया है कि समस्त जनता दोनों को अत्यन्त प्रसन्नता से देखती थी।[15] सोमेश्वर ने विनोद के लिए घुड़दौड़ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। दौड़ के लिए सुवर्ण-पट्टों द्वारा घोड़ों का वक्ष स्थल सजाया जाता था और कनक की श्रँखलाएं उनके गले में डाली जाती थी। अत्यन्त चतुर अश्रारोही दो भागों में आठ-आठ की संख्या में विभक्त किए जाते थे। राजा दौड़ में जीतने राले को घोड़ा, स्वर्ण वस्त्र भेंट करता था। भुवनेश्वर के लिंगराज मन्दिर में घुड़दौड़ के चित्रफलक बने हुए है।[16]

संगीत मनोरंजन का अत्यन्त प्राचीन साधन है तथा इस विद्या को गान्धर्व विद्या भी कहा जाता है। पूर्वमध्यकालीन समाज में नर-नारियों के मनोरंजन का एक प्रमुख साधन संगीत की मधुर ध्वनि भी थी। इससे राजा-प्रजा, पुरूष, आर्य-अनार्य सभी वर्णों के लोग नित्य-प्रति अपना मन बहलाते थे। नारद के संगीत मकरन्द में 93 रागों (8वीं शती) का उल्लेख है। खजुराहो, भुवनेश्वर (10वीं शती) तथा सम्पूर्ण भारत में उत्कीर्म गायकों के दृश्य इस बात के द्योतक है कि पूर्व मध्यकाल में स्त्री तथा पुरूष अपनी रूचि के अनुरूप संगीत कला का चयन करते थे और समाज के द्वारा उनकी इस स्वाभाविक चितवृति पर कोई अंकुश नहीं था।[17] खजुराहों के विश्वनाथ मन्दिर में एक स्त्री राग अलापने की मुद्रा में बैठी है

एवं उसका बाँया हाथ बायें कान पर है। मनोरंजन के लिए संगीत की प्रतियोगिता भी होती थी। जैन हरिवंश में ऐसी प्रतियोगिता का वर्णन है, जिसमें कुमारवासुदेव ने खेट नगर के निवासी क्षत्रिय वंशी सुग्रीव नामक गायनाचार्य को संगीत शास्त्र में पराजित कर उनकी दोनों पुत्रियों का वरण किया था।[18] सोमदेव सूरी के कथासरितसागर में उल्लेख मिलता है कि नरवाहनदत्त गीत-गोष्ठी में दिनभर मनोरंजन करता था। इसी प्रकार रत्नप्रभा के महल में मनोरंजन के लिए संगीत का आयोजन किया गया था। संगीत, राग एवं गायन का उल्लेख लक्ष्मणराज द्वितीय (कलचुरी) के कारीतलाई शिलालेख में भी हुआहै। वाहर के रतनपुर शिलालेख में वंक एवं त्रिवक में वाद्ययन्त्र बजाने एवं साथ-साथ त्रिताल एवं सप्तताल का उल्लेख है। हरिब्रम्हदेव के खलारी शिलालेख में कहा गया है कि वह गायन विद्या में भरतमुनि के समान था। बिल्हण ने विक्रमांकदेव चरित में राजां एवं रानियों द्वारा मनोरंजन के लिए पंचम स्वर में गाने का उल्लेख है।[19] सोमेश्वर ने मानसोल्लास के विभिन्न व्यक्तियों की रूचि अनुसार तथा अवसर के अनुसार गाये जाने वाले गीतों का वर्णन किया है। इन्हीं गीत विनोदो के उपलक्ष्य में सोमेश्वर ने सभी प्रकार के छन्दों की परिभाषाओं एवं उनके लक्षणों का वर्णन किया है। क्षेमेन्द्र संगीतकला के कुशल मर्मज्ञ थे, उनके ग्रन्थों में स्वर, मूर्च्छा, श्रुति आरोह, अवरोह, गमक, ताल आदि का वर्णन मिलता है। कलाविलास के सप्तम सर्ग में कहा गया है कि गायन और वादन दोनों विधाओं का ज्ञान समाज को था। गायक और वादक दोनों ही अपनी कलाओं से समाज का मनोरंजन करते थे।

साहित्य में नृत्यकला को संगीत की भगिनी कहा गया है। वात्स्यायन ने तो नृत्यकला का ज्ञान सबके लिए आवश्यक बताया है। पूर्वमध्यकालीन समाज में नर-नारी नृत्य की अनेक भगिंमाओं द्वारा विभिन्न उत्सवों के अवसर पर अपना मनोरंजन करते थे। राजशेखर ने आरभट्टी, चर्चरी एवं नटी जैसे नृत्यु का उल्लेख किया है।[20] नटी नृत्य नट समुदाय के लोगों द्वारा किया जाता था। चर्चरी नृत्य वट सावित्री जैसे महोत्सव के अवसर पर आयोजित किया जाता था। नृत्य की समाप्ति पर नर्तकियाँ एक-दूसरे पर पानी के फौव्वारे छोड़कर आनन्दोल्लास से परिपूर्ण वातावरण को अधिकाधिक रसमय बनाकर लोगों का मनोरंजन करती थी। कथासरितसागर में वर्णन है कि गुणशर्मा ने महासेन के दरबार में आंगिक नृत्य के द्वारा उपस्थित जनों का मनोरंजन किया था।[21] सोमदेवसूरी ने गोष्ठियों में सम्मिलित होने वाले नर्तक छः प्रकार के बताये है यथा- नर्तकी, नट, नर्तक, वैत्रालिक, चारण तथा लाटिका। बिल्हन ने नृत्य कला का विस्तार से वर्णन करते हुए लिखा है कि उस नगर (कल्याणी) की नृत्यांगना नारियों के सुन्दर अभिनय, भावव्यंजक अंग विक्षेपों के द्वारा प्रदर्शित नृत्यकला के चारूत्व से रम्भा नामक अप्सरा भी आश्चर्यचकित हो जाती थी। बिल्हण ने नृत्य की शिक्षा देने का भी उल्लेख किया है। नृत्य का उल्लेख रत्नदेव तृतीय के खरोद शिलालेख में भी प्राप्त होता है। हर्षगिरी के पुराने महादेव मन्दिर (10वीं शती) में नृत्य का दृश्य है, जिसमें नर्तकी के चारों ओर पुरुष वादक उसे घेरे है। किराड़ (राजस्थान) से प्राप्त एक फलक पर नृत्य करती हुई स्त्रियाँ दर्शायी गई हैं।[22] नृत्य प्रदर्शन में खजुराहों की मूर्तिकला सर्वाधिक प्रसिद्ध है, इससे समाज में व्याप्त स्त्री-पुरूषषकी प्रसन्नता की कल्पना की जा सकती है।

जनता के मनोरंजनार्थ नाटकों का आयोजन गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। इस काल में कालिदास जैसे लेखकों के नाटक अत्यधिक लोकप्रिय हुए। मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि देवासुर संग्राम में असुरों को पराजित करने वाले राजा पुरूरवा के स्वागत में अभिनय-प्रदर्शन किया गया था। उस अवसर पर भरतमुनि द्वारा लिखित 'लक्ष्मी-स्वयंवर' नाटक अभिनीत हुआ था जिसमें लक्ष्मी का अभिनय उर्वशी ने किया गया था जो मुनि के वचनों को बूलकर पुरूरवा के प्रति आकृष्ठ हो गई थी। इस पर क्रोधित होकर मुनि ने उसे स्वर्ग से पतित होकर भूतल पर रहने का शाप दिया था।[23] प्रसिद्ध संस्कृत नाटक प्रियदर्शिका, नागानन्द, रत्नावली, कर्पूरमंजरी, वेणीसंहार, प्रबोधचन्द्रोदय, मालतीमाधव एवं उत्तररामचरित आदि इस बात के प्रमाण है कि पूर्वमध्यकाल में नाटक लोगों के मनोरंजन का प्रमुख साधन थे। राजशेखर के ग्रन्थ कर्पूरमंजरी और विद्धशालभंजिका नाट्य कृतियाँ ही है। राजसेखर की पत्नी अवन्तिसुन्दरी की तीव्र इच्छा थी कि राजशेखर प्रणीत नाटक 'कर्पूरमंजरी' मंच पर प्रदर्शित हो।[24] चन्देल काल में उच्चकोटि के नाटकों के अभिनय की राजकीय व्यवस्था की जाती थी। प्रसिद्ध नाटक प्रबोधचन्द्रोय महाराज कीर्तिवनदेव के अनुशासन में अभिनीत हुआ था।[25] कविकण्ठाभरण में क्षेमेन्द्र ने कवि की शिक्षा के लिए 'नाट्यभिनय प्रेक्षण' अर्थात् अभिनय को देखना आवश्यक माना हहै। बालक, युवक और युद्ध-जन सभी नाटक का आनन्द लेते थे। कंकाली द्वारा अभिनय देख रहे बालकों के कंगन ले जाने का चित्रण समयमातृका में आया है।[26] देशोपदेश में विट द्वारा कपट नाटक में अभिनय का उल्लेख है। बृहत्कथामंजरी में भी क्षेमेन्द्र ने नाटकाभिनय की ओर संकेत किया है। खजुराहों मन्दिर में उत्कीर्ण एक प्रहसनदृश्य में स्त्री द्वारा एक मसखरे की दाढ़ी खीचने का विनोद पूर्ण दृश्य है।[27]

इन्द्रजाल पूर्वमध्यकालीन भारत में मनोरंजन का अच्छा एवं लोकप्रिय साधन था। इन्द्रजाल शब्द का अर्थ इन्द्रियों पर आवरण अथवा जाल पड़ जाना है। इस विद्या के द्वारा मनुष्य भ्रमित हो जाता है। भारतवर्ष में इन्द्रजाल की विद्या अत्यन्त प्राचीन है। शवर नामक असुर तथा इन्द्र इस विद्या के आचार्य थे। वात्स्यायन के कामसूत्र में भी 'ऐन्द्रजालयोगाः' का प्रसंग प्राप्त होता है। रत्नावली में भी इन्द्र तथा शवर को ही इस विद्या का आचार्य बताया गया है।[28] अलबेरूनी ने भी इन्द्रजाल क्रीड़ा की चर्चा की है। उसने भारतीयों द्वारा रस्से पर चढ़कर किये जाने वाले खेल पर लिखा है कि कई बार हिन्दुओं को इसलिए जादूगर समझा जाता है कि ऊँचे घासों पर या कसे हुए रस्सों पर चढ़कर गेंद खेलते हैं।[29] इस प्रकार के खेल भारत में जगह-जगह नट जातियों द्वारा दिखाये जाते हैं। यह खेल निम्न जातियों में परम्परागत रहा है जो कौतुकपूर्ण होने के कारण समाज में अत्यन्त लोकप्रिय रहा है। सन्ध्याकरनन्दी के रामचरित में प्राप्त उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि ऐन्द्रजालिक का प्रवेश राजदरबार से लेकर सामान्य जनता तक था। अन्तःपुर की रानियों के मनोरंजन के लिए ऐन्द्रजालिक को ही बुलवाया जाता था। ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा में सभी स्त्री-पुरूष भाग लेते थे।

ऋतुओं के अनुसार मनोविनोद की क्रीड़ाये अलग-अलग होती थी। ग्रीष्म ऋतु में की जाने वाली जलक्रीड़ा राजाओं को अत्यन्त प्रिय थी। राजशेखर के बालरामायण में उल्लेख है कि नर्मदा नदी में स्नान करती हुई अन्तःपुर की सुन्दर स्त्रियाँ अपने पतियों पर पिचकारियों से जल बौछार करती थी।[30] काव्यमीमांसा तथा सरस्वती कंठाभरण में जलक्रीड़ा का वर्णन है।[31] वर्षागमन पर जब नई घास उगने लगती है पेड़-पौधों पर नई पत्तियाँ आने लगती तब स्त्रियाँ जंगलों में चली जाती और वहां जलपान के पश्चात् आपस में विवाह कौतुक करती थी। कथासरितसागर में जलक्रीड़ा का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन है।[32] राजा सातवाहन जलक्रीडा के लिए रानियों के साथ बावली में उतरा एवं जल में वह रानियों को हाथ से फेंके गए छीटों से भिगोने लगा और रानियां भी उसे उसी प्रकार भिगोने लगी जैसे हथिनियां हाथी को भिगोती है। चेदिवंश के विलहरी शिलालेख में रीवा नदी में स्त्रियों के स्नान का वर्णन है। इसी प्रकार चेदिशासक

कर्णदेव के बनारस ताम्रपत्र में भी रानी के नदी स्नान का वर्णन है। कथासरितसागर में उद्यान-क्रीड़ा के भी प्रसंग प्राप्त होते हैं। एक बार राजा सुषेण बिना पत्नियों के उद्यान भ्रमण कर रहे थे। रम्भा ने उद्यान में बैठे हुए राजा को इस प्रकार देखा जैसे प्रफुल्ल पुष्प वन में मूर्तिमान बसन्त हो। हेमचन्द्र ने कुमारपालचरित में एक ऐसे उद्यान का वर्णन किया है, जिसमें राजा तथा उच्च वर्ग के लोग उद्यान क्रीड़ा किया करते थे। आत्मविस्मृत कर देने वाली कन्दुक क्रीडा स्त्रियों का सर्वाधिक प्रिय खेल था। खजुराहों की कन्दुक खेलती हुई स्त्री की मुद्रा से आभासित होता है कि यह कन्दुक फेंकने और पकड़ने का साधारण खेल है। अधिकांशतः यह खेल अन्तःपुर में खेला जाता था और कभी-कभी रमणियों की कन्दुक मार्ग पर चलते राहगीरों को भी लग जाती थी।[33] विक्रमांकदेवचरित में विस्तार से हिण्डोला क्रीड़ा द्वारा मनोरंजन का चित्र है। तत्कालीन जन मनोरंजनार्थ कथा-कहानी का भी आयोजन करते थे। राजदरबार में तो कथा सुनाने के लिए विशेष व्यक्ति ही नियुक्त होते थे जिसे 'कथक' की संज्ञा दी जाती थी। राजा तो अपने साथ विदूक रखा करते थे। ह भी समय-समय पर कथाऐं सुनाकर राजा का मनोरंजन करता था। सम्पूर्ण कथासरितसागर ही महारानी के मनोरंजन के लिए सुनायी गयी मनोरंज मनोरंजक कथा है।[34] राजा सहसानीक के राजदरबार में संगतक नामक कथा सुनाने वाला था। वसन्तक जो राजा उदयन का मित्र था, एक कथक ही था। वह समय-समय पर सुन्दर-सुन्दर कथाएँ कहकर उदयन और वासवदत्ता का मनोरंजन करता था। एक बार राजा के प्रति राजभक्ति बढ़ाने के लिए उसने गुहसेन और देवस्मिता की कहानी वासवदत्ता को सुनायी थी। एक दिन अकस्मात् पिंगलिका नामक ब्राह्मणी उदयन की राजसभा में उपस्थित हुई तथा वह कथा कहने में निपुण थी। वासवदत्ता ने ब्राह्मणी से कहा कि मनोविनोद के लिए कोई कथा सुनाओं। तदन्तर उसने राजा देवदत्त और उसकी वेश्या पत्नी की मनोरंजक कथा सुनायी।[35] वात्स्यायन के समय में भी कथा कहने का अधिकार मात्रा में प्रचार था। कथा कहने वाले चतुर शिक्षित तथा सज्जन व्यक्ति का विद्वानों की सभा में आदर होता था।

पूर्वमध्यकालीन मनोरंजन के साधनों में गोष्ठियों का भी पर्याप्त महत्व था। गोष्ठियाँ राजदरबारों, तथा सार्वजनिक स्थानों पर की जाती थी। ये गोष्ठियाँ संगीत, कथा, चित्र, नृत्य आदि विषयों से सम्बन्धित होती थी। सन्ध्याकरनदी ने गोष्ठियों के भी दो प्रकार निर्दिष्ट किए हैं।[36] एक तो दुर्व्यसनी जनों की गोष्ठी होती थी जिसमें जुआ, हिंसा कर्म आदि सम्मिलित थे। दूसरे प्रकार की गोष्ठी विशुद्ध रूप से शैक्षणिक विषयों से सम्बन्धित थी, जिसमें सुबुद्धि जन भाग लेते थे। कथासरितसागर में कतिपय गोष्ठियों का उल्लेख है।[37] इन गोष्ठियों में कुछ तो जुआरियों की थी तथा कुछ कलाप्रेमियों की। दुर्व्यसनी जनों की गोष्ठियों में जन साधारण भी भाग लेते थे। कथासरितसागर के अनुसार रजा सूर्यप्रभ के प्रत्यागमन पर उनके राजप्रसाद में संगीत गोष्ठी का आयोजन किया गया था। मदनमाला के महल में भी एक संगीतशाला थी, उसमें हमेशा संगीत की गोष्ठी होती रहती थी। राजशेखर ने काव्यसीमांसा में काव्य गोष्ठी का उल्लेख किया है।[38] काव्य-पाठ विद्वान एवं जनसाधारण दोनों समझने योग्य होते थे। काव्य गोष्ठी का आयोजन दोपहर में भोजनोपरान्त किया जाता था। कविकण्ठाभरण में शिक्षा पाने वाले कवि का इन गोष्ठियों में सम्मिलित होना अनिवार्य बताया गया है। गोष्ठियों में अनेक प्रकार की प्रतियोगिताएँ होती थी। काव्यसमस्यापूर्म का सामान्य प्रचलन था एवं इसका एक रूप अक्षरमुष्ठिका था। इसमें कुछ अक्षरों को छोड़ दिया जाता था जिसे विद्वज्जन पूरा कर आनन्द लाभ करते थे। अल्बेरूनी ने भी गोष्ठियों का वर्णन करते हुए हिन्दुओं में कविताओं तथा उनके पाठ के प्रति रूचि की चर्चा की है। उसके अनुसार भावार्थ को न समझने पर भी श्रोतागण अँगुलियों को उठाकर अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते थे। गोष्ठियों में शास्त्रार्थ भी हुआ करते थे और पराजित पक्ष को विजेता पक्ष की शर्त पूरी करनी पड़ती थी। जैनहरिवंश के अनुसार याज्ञवल्क्य ने सुलभा नामक विदुषी को शास्त्रार्थ में पराजित कर पाणिग्रहण किया था।[39]

पूर्वमध्यकालीन साहित्य में वर्णित उत्सरों में वसन्तोत्सव की चर्चा सर्वाधिक है। तत्कालीन लोकोत्सवों में यह सर्वप्रधान था, इसमें सन्देह नहीं। यह उत्सव निश्चित रूप से सपत्नीक माना जाता था। नरवाहनदत्त ने नारिकेलद्वीप में जाकर वसन्तोत्सव मनाया था। सरस्वतीकंठाभरण में लिखा है कि उक्त उत्सव में विलासिनी स्त्रियाँ कुवलय की माला एवं आम्रमंजरी पहनकर गाँव को जगमग कर देती थी।[40] कथासरितसागर में एक स्थल पर लिखा है कि वसन्तोत्सव के समय मेला लगता था।[41] मेले में सामान्य वर्ग के पुरूष-स्त्रियाँ तथा राजपरिवार की कन्याएँ भी घूमने जाती थी। रथयात्रा नामक उत्सव भी इस काल में मनाया जाता था। पहले इसे यात्रोत्सव कहा जाता था। यह उत्सव आषाढ़ शुक्ल की चतुर्दशी को मनाया जाता था। इस उत्सव पर नदी में स्नान का भी महत्व वर्णित है। देशोत्सव का उल्लेख भी देशोपदेश में आया है। अल्बेरूनी[42] ने कश्मीर में प्रचलित अग्रदूत उत्सव का उल्लेख किया है, चैत्रमास की पूर्णिमा के दिन मनाया जाता था। राजतरंगिनी में भी चैत्रोत्सव को समस्त प्रजा के लिए आन्नदजनक बतलाया है। आषाढ़ मास में गौरीपूजन, श्रावणमास में पूर्णमासी के दिन व्रत आदि तथा भाद्र मास में कृष्ण जन्मोत्सव मनाने की चर्चा अलबेरूनी से मिलती है। पुत्र जन्म का उत्सव महान वर्ष का विषय माना जाता था। कथासरितसागर से पता चलता है कि नरवाहनदत्त के जन्म से शुभ समाचार पाते ही राजमहल में एक अपूर्ण खुशी छा गयी थी। इसी प्रकार राजा कनकवर्ष ने भी पुत्र जन्मोत्सव मनाया। अलंकारप्रभा के भी पुत्र जन्मोत्सव मनाने का वर्णन मिलता है।[43] इन उत्सरों के अतिरिक्त विवाहोत्सव भी सामाजिक जीरन का अविभाज्य अंग था। इन उत्सवों में समस्त लोग उत्साह के साथ एकत्रित होते थे। नर्ममाला के तृतीय परिहास में 'योगोत्सव' का विस्तृत चित्रण प्राप्त होता है जिसमें सभी दिविरबन्ध सपरिवार सम्मिलित हुए।[44] दुर्गा उत्सव का उल्लेख भी कथासरितसागर में है।

पशु-पक्षी मानव के अभिन्न साथी हैं। तोता, मैना, कबूतर आदि पक्षी तथा मृग, खरगोश, बन्दर आदि जीव मनोरंजन के लिए घरों में पाले जाते थे। स्त्रियों की इनके प्रति विशेष अभिरूचि रही है। पाल शासक धर्मपाल के खलिमपुर अभिलेख के अनुसार पिंजरे में बन्द शुक मानव के मन बहलाव के साधन थे और स्त्रियाँ दुख के क्षणों में अपने प्रिय शुक को सम्बोधित करती थी।[45] ऐसा प्रतीत होता है कि मानव हृदय की वेदना को जितना मूक पक्षी ग्रहण कर सकता है उतना कोई अन्य नहीं। क्षेमेन्द्र के समकालीन सम्राट कलश ने एक श्येनपाल (बाज के पालक) को अपना नगरधिपति बनाया था।[46] बिल्ली की स्वामिभक्ति का उदाहरण राजतरंगिनी में मिलता है, जब उसने अपनी स्वामिनी के मरण पर प्राण त्याग दिए थे। समयमातृका में पाले हुए पक्षी को शिक्षा देने का वर्णन है। कुक्कट आदि को लड़ा कर मनोविनोद करने तथा शुकों से बातचीत करने का उल्लेख चतुर्वर्गसंग्रह में आया है।[47] मूर्तिकला में पशु-पक्षियों को मानव के साथ अत्यधिक दिखलाया गया है। खजुराहों की मूर्तियों में कुछ स्त्रियाँ हाथों में पक्षी पकड़े उनसे बात कर रही है। भुवनेश्वर के मुक्तेश्वर मन्दिर की पिछली दीवार पर द्वार पकड़े हुए शुक से बातें करते स्त्री की मूर्ति बनी है। खजुराहों के लक्ष्मण मन्दिर के बाहरी भाग में पति-पत्नी आलिंगन मुद्रा में बैठे है, निकट ही एक वानर है, जिसकी शैतानियां दोनों

देख रहे है। कन्दारिया महादेव के एक अन्य दृश्य में वानर स्त्री के दाहिने पैर पर चढ़ने का प्रयास कर रहा है और स्त्री उसकी ओर ध्यान नहीं दे रही है।[48] शुक और वानर अपनी संवेदनशीलता के कारण ही मनुष्य के स्नेहपात्र बन सके होंगे।

इस समय समाज में गणिकाएं उच्च वर्ग के लोगों के मनोरंजन का साधन थी। वे नगरों और दरबारों का मुख्य आकर्षण थी। सम्भवतः गणिका के यहां सबका प्रवेश सम्भव न था। इसलिए चतुर्माणी में मप्रभितवम नाटक में कहा गया है कि यहां के दुखड़े भी रूचिकर होते हैं, इसलिए इसका प्रवेश सबके लिए सुलभ हो।[49] चतुर्माणी में ही धूर्तविट से पता चलता है कि इस काल में वैशिकी जीवन इतना प्रभावशाली हो गया था कि गोष्ठियों में वैश्य प्रेम के विभिन्न पहलुओं पर बहस होती थी। कथासरितसागर में सामान्य लोगों को गणिकाओं से बचने की शिक्षा दी गई है और केवल धनी लोगों को उनके आहचर्य के आनन्द लेने की बात कही गई है। कल्हण ने राजतरंगिनी में वैश्या के साहचर्य के पश्चात् लोगों की मनोभावना चित्रित करने का प्रयास किया है, जो व्यक्ति गणिका के यहां जाते थे तत्जनित क्लेश अनुभव करते थे।[50] गणिकाएं विशेष उत्सवों पर दरबार में आमन्त्रित की जाती थी और वहां वे अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन करती थी। देवपारा प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि गणिकाओं ने सामतसेन का यशोगान किया था। अभिलेखों में रूपाजीवा गणिका का वर्णन है जो सभी कालों में दरबारियों को प्रभावित करती रही है। आसाम से प्राप्त तेजपुर ताम्रपत्र में गणिकाओं के साथ ग्रामदान का वर्णन है, जिससे विदित होता है कि गणिकाएं उच्च वर्ग के लोगों को रिझाने की कला पर्याप्त मात्रा में जानती थी। दरबार में गणिकाओं का महत्व इतना अधिक बढ़ गया था कि सामंत शासक अपने अधिपति को प्रसन्न करने के लिए सुन्दर गणिकाएं भेंट में देते थे। विग्रहराज द्वितीय के हर्षनाथ अभिलेख में इससे सम्बन्धित निर्देश हैं।[51] अभिलेखों से ज्ञात है कि व्यवसाय करने वाली गणिकाएं राजकोष में व्यवसायिक कर दिया करती थी। 12वीं शती के चाहमान लेख में विवरण है कि कर्नाटक देश के एक ब्राह्मण निवासी, रानक ने उस्पट्टान नर्तकी को देशबंध (एक प्रकार का कर) से मुक्त कर दिया था।[52]

ईश्वर की पूजा तथा आराधना के लिए मन्दिर में नर्तकियों का होना आवश्यक है। इस विचारधारा ने 7वीं शती तक काफी जोर पकड़ लिया था। जिसके परिणामस्वरूप देवदासीवर्ग की उत्पत्ति हुई। देवदासियां मन्दिरों में रहकर ईश्वरोपासना के लिए नृत्य करती थी। राजा विक्रमाकदेव के मन्दिर के आंगन में नृत्य करने वाली नर्तकियों का वर्णन है जो अद्वितीय रूपवती थी।[53] चाऊ-जू-कुआ के अनुसार गुजरात के चार हजार मन्दिरों में लगभग 20 हजार देवदासियां थी। राजदरबार में देवदासियां सम्मान प्राप्त करती थी। मदनवर्मा के कांलिजर सतम्भलेख में नीरकंठ मन्दिर की देवदासी पद्मावती का वर्णन है, जिसे दरबार में अत्यन्त सम्मानीय स्थान प्राप्त था। देवदासियां राजा के उपभोग की भी सामग्री मानी जाती थी। कस्मीर के शासक हर्ष को कौल सम्प्रदाय में दीक्षित देवदासियां भेंट में प्राप्त हुई थी। धर्म के नाम पर प्रारम्भ की गई इस प्रथा में विकृति आ गई थी तथा शासक वर्ग इन देवदासियों का प्रयोग व्यक्तिगत आन्नद के लिए करने लगे। कभी-कभी तो सामंत स्त्री के प्रेम में पड़कर उसे देवदासी के रूप में पड़ गये था उसने नरेन्द्र प्रभा को मन्दिर में नर्तकी के रूप में रखा था। राजा उत्कर्ष का भी उदाहरण मिलता है, जिसने मन्दिर की नर्तकी सहजा को अन्तःपुर में रखकर राजरानी का पद दिया था। अरबयात्री अलबेरूनी का वर्णन है कि इस प्रथा को शासक एवं उच्च वर्ग ने अपने मनोरंजन के लिए सहारा दिया था। उन्होंने आगे लिखा है कि यदि ऐसा न होता तो कोई ब्राह्मण या पुरोहित अनपे मन्दिरों में उन स्त्रियों को सहन न करते जो नाचती, गाती और क्रीड़ा करती हैं।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि विवेच्चय काल में शासक वर्ग तथा उच्च घराने के लोग अपनी सम्पत्ति के द्वारा विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोतों में मनोरंजन के जितने भी प्रमाण मिलते हैं, वे भी अधिकांशतः अभिजात वर्ग से सम्बन्धित है। प्रस्तुत काल में सामंतवाद के फलस्वरूप बन्द अर्थव्यवस्था होने के कारण साधारण वर्ग को अपनी आजीविका का अधिकांश भाग कर के रूप में देना पड़ता था, जिससे उन्हें जीवन-निर्वाह में ही कटिनाई होती थी। लेकिन फिर भी विशेष उत्सवों तथा त्यौहारों के अवसर पर जनसाधारण कठिन जीवन-निर्राह से छुटकारा पाकर अपने जीवन को खुशहाल करते थे।

सन्दर्भ :

(1) शर्मा, भारतीय सामंतवाद पृ. 13. (2) कादम्बरी, पृ. 60, सर्वासु द्यू तकलासू। (3) मिश्र, उर्मिला प्रकाश, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 233. (4) गोपालजी सिंह, राजशेखरकालीन भारत, पृ. 101. (5) शर्मा, राजकुमार, कलचुरि राजवंश और उनका युग, भाग-2, पृ. 240. (6) देशोपदेश, 8/23-25. (7) कलाविलास, 6/23. (8) समयमातृका, 2/8. (9) बृहत्कथामंजरी, 282/817-21. (10) मानसोल्लास, 5.1.701. (11) शर्मा, राजकुमार, वही, पृ. 241. (12) शर्मा, बी. एन., सोशल लाइफ इन नर्दर्न इण्डिया, पृ. 88. (13) मिश्र जयशंकर, ग्यारहवीं शताब्दी का भारत, पृ. 248. (14) निगम, जे.पी. क्षेमेन्द्र साहित्य में प्रतिबिम्बित भारत, पृ. 137. (15) शर्मा, राजकुमार, वही, पृ. 242. (16) मित्रा, आर. पी., ऐटिंक्विटीज ऑफ उड़ीसा, प्लेट 30. (17) मिश्र, उर्मिला प्रकाश, प्राचीन भारत में नारी, पृ. 239. (18) हरिवंश, 19/53-58. (19) बिल्हण, विक्रमांकदेवचरित, 10-30. (20) पुरी, बी. एन., दि हिस्ट्री ऑफ गुर्जर प्रतीहाराज, पृ. 125. (21) द्विवेदी, वाचस्पति, कथासरितसागर - एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 265. (22) क्रमरिश, स्टेला, द आर्ट ऑफ इण्डिया, पृ. 208, पहिका, 11. (23) मत्स्यपुराण, 24.28.31, (24) कर्पूरमंजरी, 1/11. (25) मिश्र, केशवचन्द्र, चन्देल और उनका राजत्व-काल, पृ. 171. (26) समयमात्तृका 2/82, रंगप्रेक्षणबालानां निनाय वलयादिकम्। (27) विस्वनाथमन्दिर, बांया एवं पिछला बहिरंग। (28) रत्नारली, अंक 4, ऐन्द्रजालिकोनाम अंकः। (29) मिश्र, जयशंकर, वही, पृ. 246. (30) गोपालजी, सिंह, वही, पृ. 102. (31) रायमन्थन, प्राचीन भारतीय मनोरंजन, पृ. 238. (32) द्विवेदी, हजारी प्रसाद, प्राचीन भारत का कलाविलास, पृ. 148. (33) मिश्र, उर्मिला प्रकाश, वही, पृ. 235. (34) द्विवेदी, वाचस्पति, कथासरितसागर - एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ. 165. (35) अग्रवाल, चन्द्रमोहन, भारतीय नारी विविध आयाम, पृ. 73. (36) रामपालचरित, 7/11. (37) कथासरितसागर, 7.4.26. (38) मजूमदार, आर. सी. 'दि एज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज' पृ. 385-86. (39) जैनहरिवंश, 21/129. (40) सरस्वतीकंठाभरण, 1/16. (41) द्विवेदी, वाचस्पति, वही, पृ. 166. (42) सचाऊ, अल्बेरूनीज इण्डिया, पृ. 178. (43) अग्रवाल, चन्द्रमोहन, वही, पृ. 63. (44) नर्ममाला, 3/2. (45) एपिग्रफिया इडिका, जिल्द - 4, पृ. 248. (46) राजतरंगिनी, 6/181. (47) निगम, जे.पी., रही, पृ. 137. (48) सागर विश्वविद्यालय, पुरातत्व संग्रहालय, संख्या - 192. (49) श्रंगार हाट, पद्यभ्रातकनाटक, श्लोक - 23, पृ. 31. (50) राजतरंगिनी, 8/958. (51) शर्मा दशरथ, अर्ली चौहान डायनेस्टीज, पृ. 261. (52) आर्केलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, 1908-09, पृ. 119. (53) विक्रमांकदेवचरित, 31/7/21.

❁❁